बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 70

जीडीपी पर सवाल

देश के रोजगार और उत्पादन संबंधी आधिकारिक आंकड़ों को लेकर न केवल देश में बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी लगातार सवाल उठ रहे हैं। इसकी शुरुआत तब हुई जब सन 2015 में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के आंकड़ों की 'नई शृंखला' पेश की गई और जीडीपी के आंकड़ों में अचानक सुधार आया।

सरकार के मुताबिक वृद्धि में यह तेजी बरकरार रही और भारत दुनिया की तेज बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में शामिल रहा। हालांकि इस बीच अन्य प्रमुख आर्थिक संकेतक विरोधाभासी संकेत दे रहे थे। इस बारे में समाचार पत्र मिंट में एक रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है। जीडीपी आंकड़ों की नई शृंखला और पुरानी शृंखला के बीच अहम अंतर यह था कि नए आंकड़ों की उत्पादन गणना में कॉर्पोरेट मुनाफे के आंकड़ों को भी शामिल किया गया। सैद्धांतिक तौर पर उत्पादन सर्वेक्षण के इस्तेमाल की तुलना में एक बड़ा कदम था। यह वृद्धि की गणना में मार्केटिंग जैसी कॉर्पोरेट गतिविधियों को भी शामिल करता है। उस दौर के आधिकारिक सांख्यिकीविदों के मुताबिक यह सुधार इसलिए हो सका क्योंकि एमसीए21 डेटा उपलब्ध था।

यह कंपनी मामलों के मंत्रालय के पास मौजूद पंजीकृत कंपनियों का आंकड़ा है। हालांकि अब पता चला है कि जीडीपी में इस्तेमाल किए गए इस आंकड़े में तमाम गड़बड़ियां हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय ने जून 2016 और जून 2017 के बीच एमसीए21 का परीक्षण किया और पाया कि करीब 36 फीसदी कंपनियां, जिन्हें सक्रिय माना जा रहा था, वे या तो मौजूद नहीं थीं या गलत ढंग से वर्गीकृत थीं। पूर्व मुख्य सांख्यिकीविद प्रणव सेन ने इस समाचार पत्र को बताया कि हो सकता है कि यह दिक्कत उतनी बड़ी न हो जितना इसे समझा जा रहा है। अगर इनमें से कुछ कंपनियां छद्म भी हों तो भी डॉ. सेन के मुताबिक उनका मुनाफा अर्थव्यवस्था के वास्तविक लेनदेन में परिलक्षित होता है। इसलिए जीडीपी का आकलन करते वक्त उसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। बहरहाल, यह दलील सीमित है। पहली बात तो यह कि समग्र निजी कॉर्पोरेट उत्पादन में से एमसीए21 डेटा को बाहर करने के लिए अपनाया गया तरीका विवादास्पद था। अगर इन्हें बाहर करने का आधार कुछ छद्म कंपनियां थीं तो सिद्धांतत: उनके साथ अलग तरह से व्यवहार किया जाना चाहिए। ऐसा न होने की स्थिति में सही मायनों में उत्पादन वृद्धि के अतिरंजित होने का खतरा सामने था। 2015 के बाद से जीडीपी आंकड़ों पर भी यही आरोप लग रहा है। देश में वृहद आंकड़ों की विश्वसनीयता और उनके सटीक होने पर इससे पहले कभी सवाल नहीं उठे।

यह दुर्भाग्य की बात है कि देश के आधिकारिक आंकड़ों को लेकर ये सवाल तभी उठने शुरू हुए जब रोजगार और वृद्धि से जुड़े सवाल राजनीतिक दृष्टि से संवेदनशील हो चुके हैं। निवेशकों के लिए भी यह व्याकुल करने वाला समय है। निजी निवेश में आंशिक तौर पर इसलिए सुधार नहीं हुआ है क्योंकि देश की अर्थव्यवस्था के भविष्य को लेकर अभी भी संशय है। अविश्वसनीय और अतिरंजित आंकड़ों ने आशंकाओं में इजाफा ही किया है।

दूसरे शब्दों में कहें तो दिक्कतदेह आंकड़ों का अर्थव्यवस्था पर वास्तव में असर पड़ता है। यह अहम है कि सरकार नकारने की प्रवृत्ति छोड़कर इन समस्याओं को हल करे। चुनाव के बाद नई सरकार को एक स्वतंत्र जांच बिठानी होगी और यह पता लगाना होगा कि जीडीपी और रोजगार के आंकड़ों में क्या गड़बड़ी थी?

उसे यह भी सुनिश्चित करना होगा कि यह पारदर्शी और राजनीति से दूर हो। निजता से जुड़ी चिंता को दूर करने के बाद एमसीए21 डेटा को सार्वजनिक किया जाना चाहिए ताकि स्वतंत्र अकादमिक शोध के माध्यम से आधिकारिक दावों की जांच की जा सके। कोई सरकार नहीं चाहेगी कि वह ब्रिटिश प्रधानमंत्री बेंजमिन इजराएली के कथन को सही साबित करे। उन्होंने कहा था, 'झूठ तीन तरह के होते हैं: झूठ, भीषण झूठ और आंकड़ों का झूठ।'

अजय मोहंती

भारत के लिए साझा आर्थिक कार्यक्रम

यदि कोई भी राजनीतिक दल या गठबंधन देश की अर्थव्यवस्था में बदलाव को लेकर गंभीर है तो उसे कुछ बातों पर विचार करना चाहिए। विस्तार से जानकारी दे रहे हैं **रथिन रॉय**

विकास संबंधी बदलाव में कई मोर्चों पर परिवर्तन देखने को मिलता है। परंतु सत्य यह भी है कि बिना उच्च, स्थिर और समावेशी आर्थिक विकास के किसी भी तरह का परिवर्तन देखने को नहीं मिल सकता।

किसी भी राजनीतिक दल या गठबंधन का आर्थिक कार्यक्रम अगर देश में बदलाव लाने के प्रति गंभीर है तो उसमें चार आर्थिक लक्ष्य अवश्य शामिल होने चाहिए। इस लिहाज से मैं यहां एक साझा आर्थिक कार्यक्रम की पेशकश कर रहा हूं।

जीडीपी के घटक में ढांचागत बदलाव

जैसा कि मैंने पहले भी अपने स्तंभों में कहा है, भारत मध्य आय वर्ग के जाल की ओर बढ़ रहा है। अब तक देश की वृद्धि को शीर्ष 10 करोड़ लोगों की मांग पूरी करके बढ़ावा मिलता रहा है। यही कारण है कि बॉम्बे के आर्थिक प्रदर्शन संबंधी संकेतक कारों की बिक्री, दोपहिया वाहनों की बिक्री, एयरकंडीशनर और महंगे मकानों आदि से संचालित होते रहे हैं। 120 करोड़ भारतीय जिन पोषक खाद्य पदार्थों, कपड़ों, सस्ते मकानों और सस्ती स्वास्थ्य सुविधाओं एवं शिक्षा आदि पर निर्भर रहते हैं, वे इनमें नहीं आते। अगर जीडीपी वृद्धि के घटक में इन वस्तुओं की हिस्सेदारी नहीं बढ़ती है तो हम मध्य आय वर्ग के जाल में उलझ जाएंगे। आर्थिक गतिविधियों के ये क्षेत्र हर भारतीय के जीवन से संबद्ध हैं। इन्हें ही देश की आर्थिक गतिविधि का प्राथमिक संकेतक होना चाहिए और सरकार को इन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

एक अरब लोगों के लिए सब्सिडी और आय समर्थन की मदद से खपत में इतना अधिक इजाफा करना संभव नहीं नजर आता। कम से कम आधी आबादी को इतनी आय अर्जित करनी चाहिए कि वह ये सब चीजें उचित मूल्य पर खरीद सके। ऐसी स्थिति में अधिकतम 50 करोड़ लोगों को जीवन स्तर सुधारने के लिए सब्सिडी दी जा सकती है।

यही वह चाबी है जिससे रोजगार, समावेशन और स्थायी और निरंतर वृद्धि का रास्ता खुलेगा।

वृद्धि में ढांचागत बदलाव

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) तथा कुछ अन्य क्षेत्रों को छोड़ दें तो बढ़िया आर्थिक वृद्धि दक्षिण और पश्चिम भारत में नजर आई है। उत्तर और पूर्वी भारत को बढ़ा लाभ उन प्रवासियों से हुआ जिन्होंने दक्षिण और पश्चिम भारत से धन प्रेषित किया। कुछ प्रवासियों को आईटी, वाहन निर्माण, हीरा कटिंग आदि आर्थिक अवसरों का लाभ मिला लेकिन इनमें से अधिकांश को कम वेतन वाले और असुरक्षित रोजगार से संतोष करना पड़ा। ये प्राय: विनिर्माण श्रमिक, घरेलू नौकर और अमीरों के सुरक्षा गार्ड आदि की नौकरियां हैं। उत्तर भारत और पूर्वी भारत में गुणवत्तापूर्ण रोजगार मुहैया कराने वाली गतिविधियों को बढ़ावा देना महत्त्वपूर्ण है।

तकनीकी और विरासती पिछड़ेपन का मुकाबला करने के लिए ऐसी आर्थिक नीति की आवश्यकता है जो रोजगार दिला सके और धीरे-धीरे ही सही क्षमताओं में इजाफा कर सके। यह बात उन पांच क्षेत्रों को महत्त्व देने की बात को भी रेखांकित करती है जिनका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं।

विश्वसनीय वृहद आर्थिक नीति

इसमें दो राय नहीं कि हमारे देश में पिछले तीन दशक में आर्थिक नीति की विश्वसनीयता में काफी सुधार हुआ है। परंतु अभी भी अल्पावधि का सोच और रक्षात्मकता ही इसकी पहचान बनी हुई है।

मध्यम अवधि के आर्थिक नीति ढांचे की बात करें तो वह सक्षम बनाने वाला ऐसा कारक है जिसकी कमी से हम जूझ रहे हैं। ऐसा संभवत: इसलिए है कि यह जो अनुशासन थोपता है वह विवेक से निर्णय लेने की क्षमता कम करता है और तदर्थ तथा अल्पकालिक संस्कृति को कम करता है जबकि वरिष्ठ पदों पर बैठे लोग इसके आदी होते हैं।

एक के बाद एक अनेक सरकारों ने राजकोषीय अनुशासन कायम करने की बात कही है। उन्होंने ऐसा करने की क्षमता भी दिखाई है लेकिन इसके साथ साथ उनके रुख में कई बार इच्छाशक्ति की कमी भी नजर आई है।

कर नीति को ऐसे अनुमानों पर आधारित करना होगा जिसके लिए राजनेता जवाबदेह होते हैं। लक्ष्य तय करके कर दरों से बार-बार छेड़छाड़ नहीं की जानी चाहिए। यह वृहद आर्थिक नीति के लिए अच्छा नहीं होता। विनिवेश को केवल राजकोषीय कमी दूर करने की खातिर तदर्थ ढंग से नहीं जारी रखा जा सकता है। बजटीय और वित्तीय क्षेत्र की नीतियां ऐसी नहीं हो सकतीं कि प्राधिकार अल्पकालिक लाभ के लिए सरकारी क्षेत्र के साथ छेड़छाड़ करे।

मौद्रिक नीति की बात करें तो मौद्रिक नीति के ढांचे में सुधार करने की भी गुंजाइश मौजूद है। मुद्रास्फीति के प्रति रुख को विशिष्ट बनाकर और ट्रेडऑफ के जरिए ऐसा किया जा सकता है।

बेहतर सरकार, कम विवेकाधिकार, अधिक नियम

हमारे देश में सरकारी व्यय की उत्पादकता कम है क्योंकि हमारे यहां राजकोषीय गुंजाइश भी सीमित है। सरकारी व्यय बढ़ाने की दलीलों में बहुत अधिक वजन नहीं है क्योंकि किफायत में कमी स्पष्ट है और सरकारी व्यय का प्रभाव कमतर रहा है। इससे निजात पाने के लिए तकनीक का प्रयोग करने के प्रयासों को सीमित सफलता मिली है क्योंकि इसकी मूल वजह को हल करने का प्रयास नहीं किया गया है।

सरकारी मशीनरी की बात करें तो वह भी पुरानी हो चुकी है। सामंती और औपनिवेशिक परंपरा में नीतिगत हस्तक्षेप अभी भी नौकरशाही के विवेकाधिकार के लिए काफी कुछ छोड़ देते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि जनहित के अलावा अन्य कारणों से भी हस्तक्षेप किया जाता है।

कुछ अपवादों के साथ नौकरशाही समय पर नीतियां प्रस्तुत करने और नीतिगत कमियों को तीव्र गति से दूर करने में नाकाम रही है। मीडिया और इवेंट मैनेजमेंट का इस्तेमाल इसे छिपाने और जवाबदेही से बचने के लिए किया जा सकता है लेकिन इससे उत्पादकता की समस्या दूर नहीं होती। यह आवश्यक है कि सरकार नियम आधारित आर्थिक प्रशासन की प्रतिबद्धता जाहिर करे।

इतना ही नहीं ऐसा कोई सामाजिक आर्थिक आंदोलन भी नहीं नजर आ रहा है जो सरकार को नियम आधारित आर्थिक शासन अपनाने को बाध्य कर सके।

यह काम सक्षम राजनीतिक नेतृत्व ही कर सकता है। लंबी अवधि के लाभ के लिए अल्पावधि के लाभ को त्यागने का साहस दिखाना होगा और यही देश की अर्थव्यवस्था में सकारात्मक बदलाव लाने वाला साबित हो सकता है।

मेरी दृष्टि में शासकीय आर्थिक प्रशासन में सुधार को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। जैसे हालात हैं, उस नजरिए से देखें तो किसी भी सफलता के लिए यह एक पूर्व शर्त की तरह है। एक कमजोर राज्य अच्छा प्रदर्शन करने में कामयाब नहीं हो सकता।

बिना सक्षम राष्ट्र के बदलाव लाना संभव नहीं है। आर्थिक कार्यक्रम के जरिए देश में बदलाव लाने की दिशा में काम करने वाली सरकार इन लक्ष्यों को प्राथमिकता में रखेगी न कि केवल अतीत की गलतियों में सुधार करेगी।

दक्षिण में भी बनाया जा सकता है ग्रीष्म अवकाश का पीठ

अदालती आईना

एम जे एंटनी

अगले हफ्ते उच्चतम न्यायालय ग्रीष्मकालीन अवकाश के चलते करीब दो महीने के लिए बंद हो जाएगा। हालांकि इस दौरान तात्कालिक महत्त्व के मामलों की सुनवाई और पुराने मामलों के निपटारे के लिए एक-एक पीठ सक्रिय बने रहेंगे। कानून के लिए यह एक नासमझी भरा वक्त है।

अब वक्त आ गया है कि गर्मियों में लंबे समय के लिए नियमित न्यायिक कार्यवाही बंद रखने की औपनिवेशिक काल से चली आ रही परंपरा की समीक्षा की जाए। जब यह परिपाटी शुरू हुई थी उस समय तपती गर्मी से बेहाल हुक्मरान दिल्ली छोड़कर दो महीने के लिए पहाड़ों या अपने पैतृक स्थानों की सैर पर चले जाया करते थे। उन दिनों न तो एयर कंडीशनर होते थे और न ही इंटरनेट, ई-लाइब्रेरी, ई-फाइलिंग या वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग की ही सुविधा मौजूद थी। लेकिन अब हालात पूरी तरह बदल चुके हैं। ऐसे में इतनी लंबी छुट्टियों को सही ठहराने वाले तर्क बहुत कम रह गए हैं। अब लाइब्रेरी इंटरनेट पर ही उपलब्ध है और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की लाइब्रेरी को भी दुनिया में कहीं से देखा जा सकता है। किताबों के गट्ठर को दूसरे शहरों में ले जाने की जरूरत नहीं रह गई है और इसकी अदालत या वादियों पर कोई लागत भी नहीं आती है। वकील अक्सर अपने सामने लैपटॉप रखकर बहस करते हैं। कुछ अदालतें तो अब बिना कागज वाली ई-कोर्ट हो चुकी हैं। लिहाजा प्रायोगिक तौर पर गर्मियों के दौरान उच्चतम न्यायालय की कार्यवाही को बेंगलूरु जैसे खुशनुमा परिवेश वाले शहर में स्थानांतरित किया जा सकता है।

हाल में सर्वोच्च न्यायालय के इर्दगिर्द 'फिक्सरों' एवं पावर ब्रोकरों के सक्रिय होने के आरोप लगने के बाद ऐसे स्थानांतरण की जरूरत और ज्यादा लगती है। राजधानी होने के नाते दिल्ली सत्ता का केंद्र है जहां अलग-अलग हित समूहों के लिए लॉबी करने वाले और अनुकूल फैसलों के लिए सत्ता के गलियारों में दलालों की मौजूदगी ही एक मुद्दा रहती है। दो साल पहले एक व्हिसल ब्लोअर केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) के पूर्व निदेशक के सरकारी आवास पर रखी लॉगबुक को उच्चतम न्यायालय के संज्ञान में लाया था। उस लॉगबुक से पता चला कि कुछ चलता-पुर्जा लोग वहां रात के समय अक्सर आते रहते थे। पिछले हफ्ते अदालत के आसपास की घटनाओं के बाद एक पूर्व न्यायाधीश की अध्यक्षता में समिति का गठन अभी तक अटकलें मानी जा रही घटनाओं की पुष्टि करता हुआ ही लग रहा है।

अदालत ने खुद भी विधिक प्रक्रिया में भौगोलिक दूरियों को कमतर करता आया है। पिछले हफ्ते उसने नाइजीरिया में रहने वाले एक गवाह को राजस्थान के चुरु की एक सत्र अदालत में वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिये पेश होने की इजाजत दी है। पहले भी एक भारतीय अदालत ने अमेरिका में रह रहे एक व्यक्ति तक पहुंचने के लिए ऐसा ही आदेश दिया था। बिहार में खतरनाक कैदियों की आपराधिक अदालतों में पेशी के लिए वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग का सहारा लिया जाता है। इसका मतलब है कि अकेले दिल्ली में ही कानूनी कार्यवाहियां नहीं चलती हैं।

फिर भी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश दिल्ली के बाहर पीठों के गठन को लेकर लगातार आपत्तियां जताते रहे हैं। उनकी मुख्य आपत्ति यह होती है कि इससे संवैधानिक अदालत की एकल प्रकृति प्रभावित होगी और सर्वोच्च न्यायिक संस्थान की संपूर्णता भी कम होगी। लेकिन आज के इलेक्ट्रॉनिक युग में यह दलील भी कमजोर हो चुकी है क्योंकि शोध समेत न्यायिक कार्यों का बड़ा हिस्सा कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) के हवाले किया जा सकता है। अगल-बगल के 14 अदालती कक्षों से विरोधाभासी फैसले आने से न्यायाधीशों का रुख भी थोड़ा विडंबनापूर्ण हो जाता है और सैकड़ों मामले बड़े पीठों को भेजे जाते हैं। किसी भी सूरत में अदालत की संपूर्णता पर इससे कोई असर नहीं पड़ेगा अगर एक अवकाशकालीन पीठ दो महीनों के लिए दक्षिण भारत में काम करता है।

एक-दो न्यायाधीशों से बनने वाला अवकाशकालीन पीठ तात्कालिक महत्त्व के मामले सीमित संख्या में ही सुनता है। ऐसे पीठ हफ्ते में एक या दो दिन ही बैठते हैं लेकिन अब इनकी संख्या थोड़ी बढ़ी है। उनके सामने लंच तक करीब 30 नई याचिकाएं सूचीबद्ध होती हैं। उनमें से आधी याचिकाओं को तो पीठ 'अत्यावश्यक नहीं' कहते हुए सिरे से खारिज कर देते हैं। पीठ मुख्य रूप से अंतरिम आदेश पारित करता है। इस ग्रीष्मकालीन गतिविधि को किसी दूसरे शहर में भी अंजाम दिया जा सकता है। आगे चलकर इन पीठों को स्थायी पीठ या सर्किट पीठों के रूप में भी तब्दील किया जा सकता है। इससे दक्षिणी राज्यों को होने वाली असुविधा भी कम होगी।

उच्चतम न्यायालय ने कम-से-कम आठ विधि आयोगों और एक संसदीय समिति की रिपोर्ट पर अब तक निष्ठुर रवैया अपनाया है जिनमें देश के दूसरे हिस्सों में भी पीठें बनाने की अनुशंसा की गई हैं। मुख्य न्यायाधीश ने वर्ष 2015 में दायर उस याचिका को खारिज कर दिया था जिसमें सर्वोच्च न्यायालय से संविधान के अनुच्छेद 130 के तहत दूसरे शहरों में पीठों के गठन की मांग की गई थी। दक्षिण भारत के उस याची से मुख्य न्यायाधीश ने कहा था, 'इस प्रावधान का इस्तेमाल फिर कभी किया जा सकता है। अभी नहीं।' ऐसे अड़ियल रवैये की वजह से याचियों को गलत फैसलों की भी मार और पीड़ा सहनी पड़ती है क्योंकि वे उच्च न्यायालयों के खिलाफ दिल्ली आकर अपील करने का भारी-भरकम खर्च नहीं वहन कर सकते हैं। कई स्वतंत्र अध्ययनों से यह बात साबित हो चुकी है कि दिल्ली के नजदीकी राज्यों से की जाने वाली अपीलों की संख्या सर्वाधिक होती है। वहीं पूर्वोत्तर के राज्यों से की जाने वाली अपीलें तुलनात्मक रूप से कम होती हैं। दिल्ली के सुल्तान को दिया सूफी संत का 'दिल्ली अभी दूर है' अभिशाप उच्चतम न्यायालय का दरवाजा खटखटाने वाले आम लोगों पर बखूबी लागू होता है।

कानाफूसी

रील बनाम रियल

परदे पर निभाए गए किरदार और वास्तविक जीवन में बहुत अंतर होता है। यह बात पिछले दिनों एक बार फिर साबित हुई। गदर एक प्रेम कथा और बॉर्डर जैसी फिल्मों में सीमापार दुश्मनों को धूल चटा देने वाले अभिनेता सनी देओल के इन कदमों ने बॉक्स ऑफिस पर उनकी फिल्मों को बहुत अधिक कामयाबी दिलाई है लेकिन गुरुदासपुर लोकसभा क्षेत्र से भारतीय जनता पार्टी के उम्मीदवार देओल को असल जीवन में बालाकोट में हुए हवाई हमलों और भारत पाकिस्तान के आपसी रिश्तों के बारे में बहुत अधिक जानकारी नहीं है। हाल में हरियाणा में प्रचार के लिए पहुंचे देओल ने पत्रकारों के साथ बातचीत के दौरान यह स्वीकार किया कि फिलहाल इन मुद्दों पर उनकी कोई राय नहीं है। उन्होंने कहा कि वह यहां लोगों की सेवा करने के इरादे से पहुंचे हैं। उन्होंने कहा कि अगर वे चुनाव जीत जाते हैं तो शयद वे अपनी राय बनाएं और तब वे उससे अवगत भी कराएंगे।

फायदे का अवसर

नेताओं के भाषण पर गौर करने वाले कई लोगों का कहना है कि इस चुनाव में कांग्रेस के प्रमुख नेताओं के भाषणों से धर्मनिरपेक्षता शब्द नदारद है। ऐसे में पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी को एक ऐसा अवसर नजर आया है जिसका वह फायदा उठा सकती हैं। यही कारण है कि वह अपनी चुनावी रैलियों में बार-बार अपनी पार्टी की धर्मनिरपेक्षता की दुहाई देती नजर आती हैं। पिछले दिनों पश्चिम बंगाल के बिश्नुपुर लोकसभा क्षेत्र में एक बार फिर उन्होंने कहा कि उनकी पार्टी के नाम में शामिल टी का अर्थ टेंपल यानी मंदिर, एम का अर्थ मस्जिद और सी का अर्थ चर्च है। ममता बनर्जी ने अपनी राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को कभी छिपाया नहीं है। ऐसे में यह उनके लिए कारगर हथियार साबित हो सकता है।

आपका पक्ष

खेद जताने के बाद राहुल ने मांगी माफी

कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष राहुल गांधी ने आखिरकार उच्चतम न्यायालय से अपने उस बयान के लिए बिना शर्त माफी मांग ली है, जिसमें उन्होंने कहा कि अब उच्चतम न्यायालय ने भी माना है कि चौकीदार चोर है। हालांकि न्यायालय ने अपने आदेश में ऐसा नहीं कहा था। इस वजह से भाजपा सांसद और अधिवक्ता मीनाक्षी लेखी ने राहुल के खिलाफ अवमानना का मामला दर्ज कराया था। सवाल राहुल गांधी की माफी का नहीं है, बल्कि इसके लिए अपनाए गए रवैये का है। गलती कोई भी कर सकता है और इसके लिए माफी मांगना बुरी बात नहीं है। लेकिन राहुल गांधी के वकील की तरफ से दायर हलफनामे में जिस तरह की भाषा अपनाई गई और कोष्ठक में खेद प्रकट करने का जिक्र किया गया था, उससे लग रहा था कि उनकी बात में बहुत दम नहीं है। सिर्फ खेद के लिए 22 पन्ने का हलफनामा दायर किया गया।

कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ने अपने दिए बयान पर उच्चतम न्यायालय से माफी मांग ली है

हलफनामे की भाषा और इतने पृष्ठ के हलफनामे को देखते हुए लगता है कि राहुल गांधी की नीयत माफी तो छोड़िये खेद प्रकट करने भी नहीं थी। उन्होंने हलफनामा शायद अदालत की अवमानना कार्रवाई से बचने के लिए दायर किया था। इस घटनाक्रम से राहुल गांधी की छवि को धक्का पहुंचा है। अगर राहुल गांधी पहली बार ही सीधे और आसान शब्दों में अपनी गलती के लिए माफी मांग लेते तो न तो उनका और न ही उनकी छवि को कोई नुकसान होता।

संजय कुमार, नई दिल्ली

लोकलुभावन चुनावी वादों का दौर

कांग्रेस ने अपने चुनाव घोषणापत्र में गरीबों को 72 हजार रुपये सालाना मदद देने का वादा कर सुर्खियां बटोर ली है। वहीं उस पर आरोप लग रहे हैं कि सत्ता में आने पर वह यह राशि कैसे दे पाएगी? इससे तो देश की आर्थिक हालत खस्ता ही होगी। लोगों में पैसा कमाने का लगाव कम हो जाएगा। चुनाव के समय ऐसी घोषणाएं होती रहती हैं। भाजपा भी ऐसी घोषणा करने से नहीं बची है। हाल में राजस्थान में हुए चुनाव में भाजपा ने बेरोजगार युवकों को भत्ता देने का वादा किया था। हालांकि भाजपा को सत्ता नहीं मिल सकी। अत: जब भाजपा मतदाताओं को लुभाने के लिए ऐसे वादे कर सकती है तो कांग्रेस क्यों नहीं कर सकती?

दिलीप कुमार गुप्ता, बरेली

कोरे वादों के झांसे में न आएं

भाजपा ने कहा था कि विदेशों में जमा काले धन को लाया जाएगा। इसके बाद गरीबों के बैंक खाते में सीधे को 15-15 लाख रुपये जमा हो जाएंगे। लेकिन अब तक न तो विदेशों से काला धन वापस लाया जा सका और न ही गरीबों के बैंक खाते में पैसा जमा हो सकें। अब लोकसभा चुनाव को देखते हुए कांग्रेस ने गरीबों को सालाना 72 हजार रुपये देने का वादा किया है। अगर कांग्रेस अपना वादा पूरी करती है तो वह 5 करोड़ परिवारों को सालाना 72 हजार रुपये देने के लिए 3.6 लाख करोड़ रुपये कहां से लाएगी। चुनाव के समय राजनीतिक दल लोगों से इस तरह से लुभावने वादे करते हैं। यह गरीबों का अपमान है क्योंकि दल अपने वादे पूरे नहीं करते हैं। लोगों को इस तरह उनके झांसे में नहीं आना चाहिए तथा सोच विचार कर ही मतदान करना चाहिए।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।